डॉ. धर्मवीर के सामाजिक विचार

–समिता एवं डॉ. जय शंकर तिवारी*
शोधछात्रा : हिन्दी, डॉ.रा.म.लो. अवध वि.वि., अयोध्या
*एसो.प्रोफे. : हिन्दी विभाग
श्री लाल बहादुर शास्त्री महाविद्यालय, गोण्डा (उ.प्र.)

भारतीय समाज व्यवस्था जन्म, जाति, वर्ण, धर्म पर आधारित है, जो असमानता पैदा करती है। आज भी इस समाज में जाति के आधार पर व्यक्ति को सम्मान दिया जाता है तो अन्य व्यक्ति को जाति के आधार पर अपमानित किया जाता है। ई.पू. 10वीं सदी के आसपास ब्राह्मण और क्षत्रिय निजी उच्चता प्रस्थापित करने के लिए पारस्परिक युद्ध एवं संघर्ष करते रहे, बाद में पराजित क्षत्रिय वर्ण के राज्यों के जनसमूह को ब्राह्मणों ने यज्ञोपवीत संस्कार बन्द कर दिये, इससे पराजित क्षत्रिय अपवित्र हो गये, जिसमें से शूद्र वर्ण का जन्म हुआ, जो आज का शिल्पकार वर्ग एवं श्रमजीवी समाज है।

संसार के हर विषय और वस्तु का अपना–अपना इतिहास होता है। हम परिवर्तनवादी हैं, परिवर्तन ही हमारा धर्म है। जब से मनुष्य ने सभ्यता की दहलीज पर कदम रखा है, वह निरन्तर आगे ही बढ़ता गया है। अपने अनुभवों, अनुभूतियों, संवेदनाओं और विचारों को आवाज देता रहा है। विश्व के सबसे बड़े लोकतान्त्रिक देश में अभी भी एक बड़ी जनसंख्या उस समाज की है, जो आज भी बहिष्कृत जिन्दगी जीने के लिए मजबूर है। आजादी के इतने वर्षों के बाद भी हम समाज के इस बड़े हिस्से को भारत की मुख्यधारा से नहीं जोड़ सके हैं। आज भी यह बहिष्कृत समाज भय, भूख, गरीबी, लाचारी तथा सरकारी भ्रष्टाचार के चलते नारकीय जीवन जीने के लिए अभिशप्त है।

वैचारिक विकृतियों के कारण मानव द्वारा प्रताड़ित, प्रभ्रमित, प्रशोषित व अधिकार वंचित मानव की मुक्ति के लिए प्रज्ञाशील मानवतावादियों का संघर्ष चलता आ रहा है। संसार में यदि दलित है तो दलित साहित्य है– ''जन्मना जायते शूद्रः संस्कारग्रत द्विज उच्चते।'' अर्थात् जन्म से सभी शूद्र हैं लेकिन संस्कार ही उच्च बनाता है। जन्म लेना मनुष्य के बस की बात नहीं है। साहित्य समाज से अभिन्न रूपेण जुड़ा हुआ है।

वर्तमान समय में उभरते आलोचकों में डॉ. धर्मवीर एक ऐसे प्रतिभा सम्पन्न और बुद्धिजीवी साहित्यकार हैं, जिनके साहित्य ने आलोचना जगत् में हलचल मचा दी है। खासकर कबीर, प्रेमचंद, अशोक वाजपेयी, डॉ. अम्बेडकर आदि के साहित्य को पढ़कर अपने विचारों में ढालना कोई मामूली काम नहीं है, जो डॉ. धर्मवीर ने किया हैं व्यवसाय से आई.ए.एस. अधिकारी का सामाजिक रूप खुलकर हमारे सामने आता है। उनके विचारों में एक नयापन भी महसूस होता है, जो हमें उनके साहित्य की ओर खींचता है।

डॉ. धर्मवीर ने लिखा है कि– ''मनुष्य की देह में स्त्री और पुरुष दोनों मेरे लिए सम्मानीय हैं। मैं स्त्री और पुरुष को पैदायसी रूप में अच्छा मानकर चलता हूँ। मनुष्य का जन्म मेरे लिए एक शुभ घड़ी है।''[1] यह नियति डॉ. धर्मवीर की दृष्टि में मानवतावाद से जुड़ती है अर्थात् मानव का उत्कर्ष समाज के फलक पर ही होता है। समाज में अव्यवस्था, अनाचार और

परिस्थिति के बिगड़ने पर कानून को दोष देते हुए लिखते हैं कि– ''जन्म के बाद हमारे कानून आते हैं। अलग–अलग धर्म हैं और अलग–अलग राष्ट्रीयताएँ हैं। स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों को लेकर उन्हीं कानूनों से मेरा संवाद चल रहा है। मैं किसी व्यक्ति को उसक व्यक्तिगत रूप में कुछ नहीं कह रहा हूँ। यदि व्यक्ति गलत काम करता है और उसका कानून उसे नहीं रोक रहा है, तो मैं उसके कानून से बात करना चाहता हूँ।''[2] वे आगे लिखते हैं कि– ''मुझे प्रेमचंद से मतलब नहीं, लेकिन प्रेमचंद पर लागू होने वाले उनके पर्सनल कानून से जरूर मतलब है। कानून इजाजत न देता तो वे रखैल नहीं रख सकते थे। वे रखैल इसलिए रख सके, क्योंकि शिवरानी के पास उसे रोकने की कोई ताकत नहीं थी।''[3]

दलित समाज को आगे बढ़ाना और मूलगामी परिवर्तन के लिए डॉ. धर्मवीर लिखते हैं कि– ''दलित परिवार में तीन शामिल हैं– दलित स्त्री, दलित पुरुष और दलित बच्चा। तीनों की जिम्मेदारियाँ हैं, तीनों को अपने काम करने हैं, तभी दलित समाज आगे बढ़ेगा।''[4] 'दलितों में दलित है स्त्री' लेख में पुष्पा विवेक ने लिखा है कि डॉ. धर्मवीर ने पूरी स्त्री जाति को दोषी बना दिया है। यह अपने लेखन के बारे में एकदम गलत धारणा बताते हुए डॉ. धर्मवीर लिखते हैं– ''मैं एक बार फिर अपनी बात को साफ–साफ कह रहा हूँ कि मैं स्त्री जाति को दोषी नहीं मानता, बल्कि उन पर और पुरुषों पर लागू होने वाले ब्राह्मविवाह के कानून को दोषी मानता हूँ। मैं सीधे स्त्री और पुरुष को कुछ नहीं कह रहा हूँ, बल्कि मेरा वास्ता उन पर लागू होने वाले तिरछे कानून से पड़ा हुआ है। कानून जारों का है। उसे पति और पत्नी ने नहीं बनाया है, बल्कि दोनों तरफ से जारों ने बनाया है।''[5] जारकर्म के सन्दर्भ में डॉ. धर्मवीर लिखते हैं– ''जारकर्मी नारी के द्वारा की गई अपने पति के साथ दुर्घटना है, जारकर्म नारी की इज्जत से खेलता है।''[6] नारी यह भूल जाए कि व्यभिचारिणी होने पर उसे सम्मान मिलेगा। तब उसका उपभोग ही होगा। जब भी सम्मान मिलेगा, उसे सदाचारिणी होने पर ही मिलेगा। विवाह और परिवार में गलत पक्ष लेकर वह आगे नहीं बढ़ सकती। अपने विकसमान चिंतन में उसे थोड़ी बहुत जगह त्याग और बलिदार के लिए भी देनी पड़ेगी। बहुत जरूरी हो और नारी के हित में हो तो वेश्यावृत्ति को पेशा के स्वरूप में स्वीकारते हुए लिखा है कि– ''जो नारियाँ उस पेश में चाना चाहे वे जाएँ।''[7] साथ ही वे कई पेशों में मिलिट्री की सेवा की तरह इसे सारी नारियों पर लागू होने वाली अनिवार्य सेवा को अनुचित बताते हैं।

तलाक के विषय में डॉ. धर्मवीर ने लिखा है– ''तलाक मृत्यु का विकल्प है। तलाक संन्यास से सौ बार अच्छा है। तलाक अपमान से बाहर निकलने का रास्ता है। यह गैरत में मरने से भली चीज है। तलाक तभी उचित है, जब यह मनुष्य का सम्मान ठहरता हो। तलाक में व्यक्ति की गरिमा बचती है। तलाक हत्या और आत्महत्या दोनों का समाधान है, ऐसी स्थिति में तलाक के रास्ते को जरूर पकड़ना चाहिए।''[8]

जारकर्म के स्थान पर तलाक को अपनाकर डॉ. धर्मवीर लोगों के सामाजिक स्तर को सुधारकर ऊँचा उठाते हुए लिखते हैं– ''जारकर्म ज्यादा बड़ा अनाचार है, क्योंकि इसमें व्यभिचार की कोई सीमा नहीं होती। तलाक एक शालीनता है, जो सदैव मर्यादित है। तलाक के द्वारा पुनर्विवाह का कानूनी रास्ता मिलना चाहिए। यही सभ्यता है। जारकर्म मनुष्य में असभ्यता का अवशेष है। तलाक हो जारकर्म नहीं, यही सम्मानजनक बात है। तलाक को स्थान मिले ओर जारकर्म दण्डित हो, यही दलित समाज का स्वस्थ दृष्टिकोण है।''[9]

आधुनिक भारत में वेश्यावृत्ति पूरे जोरों पर है। जोरों पर इसलिए है, क्योंकि इस देश के लोग ऐसा कानून नहीं बना सकते और न उसे लागू करके दिखा सकते हैं, जो वेश्यावृत्ति के विरोध में हो। ये परिभाषा ही ऐसी बनाते हैं, जिससे गिनती में वेश्यावृत्ति का दायरा छोटे से छोटा हो। आज भी ये जारकर्म को वेश्यावृत्ति नहीं कहते। डॉ. धर्मवीर को बड़ा दुःख है कि आज का हिन्दू कानून दूसरी पत्नी, उपपत्नी और रखैल रखने की पूरी इजाजत देता है।

डॉ. धर्मवीर आजीवक सिविल संहिता–2007 दूसरे अध्याय में विवाह का बात लिखते हैं– ''कोई पुरुष नीचे इन नारियों से विवाह नहीं कर सकता– माता, नानी, दादी से, सौतेली माँ, पुत्रवधू से, पुत्री, धवती, पोती से, बहन भानजी, भतीजी से, मौसी, फूफी से, चचेरी, फुफेरी, मौसेरी, ममेरी बहन से, भाभी से, सास से। कोई नारी इन पुरुषों से विवाह नहीं कर सकती– पिता, नाना, दादा से, सौतेले पिता, दामाद से, पुत्र, धेवते, पोते से, भाई, भानजे, भतीजे से, मामा, ताऊ, चाचा से, चचेरे, फुफेरे, मौसेरे, ममेरे भाई से, देवर से, ससुर से।''[10]

आजीवक विवाह में धन के खर्च की मनाही में डॉ. धर्मवीर लिखते हैं– ''आजीवक विवाह एक खुशी है। आजीवक विवाह केवल सामाजिक विवाह है, जिसमें किसी आर्थिक खर्च की आवश्यकता नहीं है और यह किसी भी हालत में आर्थिक विवाह में तब्दील नहीं किया जाएगा। आजीवक विवाह में किसी भी प्रकार का दहेज लेने और देने को या विवाह के बाद नारी द्वारा दहेज माँगने की सख्त मनाही है।''[11]

विवाह का उद्देश्य बताते हुए डॉ. धर्मवीर लिखते हैं– ''पति और पत्नी एक दूसरे की जरूरत, सहायता और सम्मान के लिए एक दूसरे के साथ आते हैं। घर का मतलब सुख, शान्ति और निश्चित गृहस्थ जीवन से है, जिसमें कलह नहीं होना चाहिए और अपने घर में आते हुए किसी को डर नहीं लगना चाहिए। मूल समस्या नारी को लेकर है इसके लिए सभी धर्मों ने अपने–अपने समाधान दिये हैं, जबकि देश ओर जाति को थामने की जिम्मेदारी पुरुष ने अपनी ज्यादा मानी हैं वही एक धर्म को दूसरे धर्म तक ले गया है तथा उसी ने अपने धर्म की स्वदेश में बाहरी आक्रमणों से रक्षा की है। वही अपनी बहू–बेटियों को पराये मर्दों की कुदृष्टि से बचाता है, तो इस प्रक्रिया में उसने नारी पर नियन्त्रण भी रखा हैं मन चंचल हो सकता है। सुन्दरता को देखकर कोई अपनी नियत बिगाड़ सकता है। इसलिए इस्लाम ने नारी को नख से शिख तक बुर्के से ढक लिया था।''[12]

हिन्दुओं के द्विज समाज ने अपनी औरतों को विधवा विवाह और पुनर्विवाह की मनाही कर उन्हें सती होने तक के लिए विवश कर दिया था। खुद यूरेाप की हालत देखी जा सकती है कि वहाँ नारी को पुरुष से स्वतन्त्र होने के लिए कितना संघर्ष करना पड़ रहा है, लेकिन नारियों को लेकर भारत के दलितों की कहानी दूसरी है। डॉ. पी.वी. काणे अपनी पुस्तक 'धर्मशास्त्र का इतिहास' के पहले भाग में बोधायन धर्म सूत्र के हवाले से बताते हैं– ''वैश्य और शूद्र अपनी स्त्रियों को नियन्त्रण में नहीं रख पाते हैं और स्वयं खेती–बारी एवं सेवा के कार्य में लगे रहते हैं। वैश्यों ने अपने आपको जैसे भी संभाला हो या न संभाला हो, लेकिन कई देशों में शूद्रों की हालत अभी तक ज्यों की त्यों चल रही है। ये अभी तक अपनी स्त्रियों पर नियन्त्रण नहीं रख पाये हैं।''[13]

डॉ. धर्मवीर कहते हैं कि दलितों को दूसरी कौमों से संघर्ष में पहले अपने घरों को जरूर देखना चाहिए। आखिर दलित जातियाँ दूसरी जातियों से मुक्ति किस–किस रूप में प्राप्त

करना चाहती हैं? दूसरी जातियों के पुरुषों से अपनी बहू–बेटियों की रक्षा की बात बहुत जरूरी है। पर तब क्या किया जाए, जब इनकी बहू–बेटियाँ खुद दूसरी जातियों के पुरुषों के साथ भागना चाहती हों? इसी बात के लिए दलित स्त्रियों पर नियन्त्रण रखना जरूरी है। दलित एक जाति के रूप में अब तक इस काम में चूकते रहे हैं। उसी ने इनकी औरतें स्वतन्त्र होने की बजाए उच्छृंखल हो जाती हैं। वे पर–पुरुषों के साथ व्यभिचार कर बैठती हैं। वैसे भी गुलाम लोगों को बहू–बेटियों की इज्जत कभी सुरक्षित नहीं समझी जा सकती।

दलितों का एक परिवार दर्शन होना चाहिए। विवाह और तलाक, बच्चे और भरण–पोषण, सम्पत्ति और गोद के बारे में इनकी अलग समाज संहिता होनी चाहिए। भिन्न परम्पराओं के कारण इनका तलाक वैसा नहीं हो सकता, जैसा द्विज समाज का होता है। द्विज समाज में कानून आने के बाद भी तलाक असम्भव है, बल्कि दलित समाज की औरतें कानून उपलब्ध होने पर भी भागती फिरती हैं। जब तक इस गैर जिम्मेदारी पर रोक नहीं लगेगी, दलित परिवार शिक्षा आदि के क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ पायेंगे। कई दलित स्त्रियाँ अपने बच्चों की शिक्षा पर कहर बनकर बैट जाती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि गृहस्थ जीवन में दलित की समस्या के लिए गैर दलितों का समाधान नहीं चल सकता। तलाक और भरण–पोषण के मामले में इन्होंने अपनी समस्याओं का समाधान अपने ढंग से निकाल रखा था। इनमें हत्या और आत्महत्या से पहले तलाक हो जाता था। बच्चे माँ के साथ भी पल जाते थे और बाप के साथ भी। माँ के साथ आया पीछे का बच्चा अगले घर में भी इज्जतदार इन्सान होता था। अपनी काबिलियत के आधार पर वह नए बाप के गाँव में चौधरी तक बन जाता था। यह ठीक नहीं कि गृहस्थ जीवन में यही समस्याएँ ज्यों की त्यों बनी रहें और इनसे इनका ऐतिहासिक समाधान छीन लिया जाये। इससे समाज में नंगापन ही बढ़ता है।

सन्दर्भ–

1. डॉ. धर्मवीर, पितृसत्ता, मातृसत्ता और जारसत्ता, खण्ड–पाँच, दलित सिविल कानून, पृ. 104
2. डॉ. धर्मवीर, पितृसत्ता, मातृसत्ता और जारसत्ता, खण्ड–छः, दूसरों की जूतियाँ, पृ. 12
3. डॉ. धर्मवीर, पितृसत्ता, मातृसत्ता और जारसत्ता, खण्ड–छः, दूसरों की जूतियाँ, पृ. 12
4. डॉ. धर्मवीर, पितृसत्ता, मातृसत्ता और जारसत्ता, खण्ड–छः, दूसरों की जूतियाँ, पृ. 29
5. डॉ. धर्मवीर, पितृसत्ता, मातृसत्ता और जारसत्ता, खण्ड–छः, दूसरों की जूतियाँ, पृ. 33
6. डॉ. धर्मवीर, पितृसत्ता, मातृसत्ता और जारसत्ता, खण्ड–छः, दूसरों की जूतियाँ, पृ. 43
7. डॉ. धर्मवीर, पितृसत्ता, मातृसत्ता और जारसत्ता, खण्ड–तीन, तीन द्विज हिन्दू स्त्रीलिंगों का चिन्तन, पृ. 84
8. डॉ. धर्मवीर, पितृसत्ता, मातृसत्ता और जारसत्ता, खण्ड–पाँच, दलित सिविल कानून, पृ. 54
9. डॉ. धर्मवीर, पितृसत्ता, मातृसत्ता और जारसत्ता, खण्ड–पाँच, दलित सिविल कानून, पृ. 56
10. डॉ. धर्मवीर, पितृसत्ता, मातृसत्ता और जारसत्ता, खण्ड–पाँच, दलित सिविल कानून, पृ. 100/101
11. डॉ. धर्मवीर, पितृसत्ता, मातृसत्ता और जारसत्ता, खण्ड–पाँच, दलित सिविल कानून, पृ. 103
12. डॉ. धर्मवीर, पितृसत्ता, मातृसत्ता और जारसत्ता, खण्ड–पाँच, दलित सिविल कानून, पृ. 104
13. डॉ. पी.वी. काणे, धर्मशास्त्र की इतिहास–प्रथम भाग, पृ. 11